Vageeshwari *Dec. 2020, Vol. 34*
ISSN 0975-7872

पंजाब के लोकप्रिय वाद्य एवं प्रस्तुतिकरण

डॉ. गुरशरन कौर
सीनियर एसिसटेंट प्रोफेसर
माता सुन्दरी कालेज फार वुमैन दिल्ली युनिवर्सटी, नई दिल्ली

सार

पंजाब के कलाकारों ने गायकी में ही नहीं अपितु वादन के क्षेत्र में भी बहुत ख्याती प्राप्त की है। पंजाब की धरती गुरूओं, शूरवीरों, परिश्रमी किसानों की भूमि है जहां अनेक लोक वाद्य, शास्त्रीय वाद्यों ने जन्म लिया। पंजाब में प्रायः वही वाद्य प्रयोग में आते रहे हैं जो सारे भारत में प्रचलित हैं लेकिन इस छोटे से लेख में मेरा प्रयास उन कुछ वाद्यों के सन्दर्भ में है जो पंजाब में विशेष महत्व रखते हैं। ताउस, रबाब, सारिन्दा, दिलरूबा, विचित्र वीणा यह सभी वाद्य विशेष रूप से पंजाब में प्रतिष्ठित रहे हैं और कुछ वाद्यों के आविष्कार का श्रेय भी पंजाब को दिया जाता है। लोक संगीत के क्षेत्र में ढ़ड्ड, अलगोज़ा आदि पंजाब के अपने वाद्य हैं और आज भी इनका वादन बहुत ही लोकप्रिय है। इन सभी वाद्यों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है एवं इस बात की भी चर्चा की गई है कि प्रस्तुतिकरण में क्या परिवर्तन आए एवं गुरू नानक देव जी ने शास्त्रीय गायन शैलियों में किस प्रकार वादन को प्रमुख रख कर हरि कीर्तन का प्रचार किया।

संकेत शब्द

लोकवाद्य, सारिंदा, रबाब, पखावज, भक्ति संगीत

जब भी हम संगीत की बात करते हैं तो सर्वप्रथम हमारा ध्यान गायन विधा की ओर जाता है। आरंभ से हमें यह भी ज्ञान है कि गायन, वादन और नृत्य इन तीन कलाओं के समावेश को संगीत कहा जाता है और यह अनादि काल से चला आ रहा है। शिव का डमरू, कृष्ण की बन्सी, सरस्वती और नारद की वीणा का अनेक संगीत ग्रन्थों में विवरण होता है। उससे यह बात स्पष्ट् है कि केवल गायन ही नहीं अपितु वादन का भी संगीत में महत्वपूर्ण स्थान है। अगर हम ध्यान से देखें तो पंजाब में अधिकतर वाद्यों का प्रयोग संगति के रूप में अधिक दिखाई देता है, एकल (solo) रूप में अर्थात् स्वतंत्र वादन के रूप में इसका प्रयोग कम हुआ है। जब हम संगति के रूप के बारे में बात करें तो पंजाब के वाद्यों का प्रयोग लोक संगीत, अर्द्ध शास्त्रीय संगीत एवं शास्त्रीय संगीत तीनों ही क्षेत्रों में होता है।

आधुनिक काल तथा कथित उन्नति एवं परिस्थिति से दूर रहने वाला पारम्परिक जनसाधारण जब अपने मनोभावों को कुछ गाकर व्यक्त करता है, तो उसके यही स्वतः स्फुरित गान लोक गीत कहलाते

तथा अपने इन गीतों को मुखरित करने के लिए वह लय, ताल और स्वर को पुष्ट करने के लिए जिन सामान्यतम उपकरणों का उपयोग करता है वे ही लोक वाद्य कहलाते हैं। हमारा अपना प्रान्त पंजाब जहां अपनी पारम्परिक स्वरावलियों के आधार पर शास्त्रीय संगीत को भैरवी, मधमाद सारंग एवं तिलंग जैसे अनेक चिरंजीवी राग प्रदान किये, वहीं शास्त्रीय संगीत के अनेक वाद्यों के पुरातन रूप हमें पंजाब के प्रदेश के लोक वाद्यों के रूप में दिखाई देते हैं।

पंजाब परिश्रमी किसानों की भूमि है, सीमा पर स्थित हमारे जवान, हमेशा ही शत्रुओं से लोहा लेने वाले वीरों की भूमि है, अपने घरों में पशु पालन एवं उद्योग व्यवसाय करने वाले परिश्रमी लोगों की भूमि है पंजाब। जब लोग कोई भी काम करते तो स्वतः ही लोक गीत स्फुरित हो जाते जैसे गेहूँ बीजते समय, चावल बीजते समय, फिर कटाई के समय लोक गीत स्वयं ही उच्चरते रहे। भार उठाते समय, मक्खन निकालते समय, शस्त्रों को चमकाते समय, लड़ाई के मैदान में जाते समय कई लोक गीतों ने स्वतः ही जन्म लिया। यह अन्दाज़ा लगाना बिलकुल भी मुश्किल नहीं कि मेहनती किसान को बैठने का समय ही नहीं था कि अपने हाथों को थोड़ा विश्राम दे सकता किसी भी वाद्य को सीखने, बजाने की कला के लिये एकान्त स्थान पर बैठना बहुत ज़रूरी है, अपने आसपास के वातावरण से अपने आप को बिलकुल अलग रखने पर ही आप अपने आप को स्वर में केन्द्रित कर सकते हैं। लेकिन उस समय कर्मवीरों को, किसान को, ग्रहणियों को ये सुविधा कम प्राप्त होती थी। इसीलिए एक विशेष बात उभर कर आती है कि ऐसे वाद्य प्रचार में अधिक आये जिस में कम समय में अभ्यास कर के लोक गीतों में प्रभूर प्रयोग किया जा सके। आवश्यक बात यह है कि इतनी पूंजी उपलब्ध नहीं थी इसलिए वाद्य यदि टूटे फूटे भी हों तो आसानी से उनकी मरम्मत हो सके। ऐसे वाद्यों में से ढ़ांड अथवा ढड, जिसे कि किन्हीं अंशों तक ढ़ोलक का लघु रूप भी माना जाता है। इसका ढांचा लगभग 7 ईंच लम्बा और बीच में से कुछ पिचका हुआ होता है तथा दोनों मुखों पर लगभग 5 ईंच व्यास के खाल के पुड़े चड़े रहते हैं। इनको पतली रस्सियों की सहायता से कसा जाता है तथा उसी रस्सी का कुछ भाग बीच में लपेट कर वादक अपने बाऐं हाथ की अंगुलियों पर लपेटे रहता है। दाएं हाथ से इसे बजाते हुए जब वह बाएं हाथ से इन रस्सियों को दबा कर और छेड़ कर विशेष प्रकार की गमक युक्त ध्वनि उत्पन्न करता है, तो उसकी ताल का स्वरूप निराला ही प्रतीत होता है। भारतीय वाद्यों के सुप्रतिष्ठित शोधकर्ता विद्वान स्वर्गीय लालमणि मिश्र ने इसे प्राचीन अवनद्ध वाद्य हुड्डका का पारंपरिक स्वरूप कहा है। इसी तरह लोक अवनद्ध वाद्य ढोल, ढोलक पर भी कहरवा, दादरा, खेमटा और दीपचन्दी के कुछ पारम्परिक ठेकों के अतिरिक्त कुछ विचित्र लोक ताल भी बजाये जाते हैं, इन के अनेक वादकों ने अपने वाद्यों पर आशातीत उन्नति करते हुए तबले और पखावज का पूरा बोल भी प्रस्तुत किया है। घुंघरू, एक तारा, काटो, चिमटा इस बात के उदाहारण हैं कि ऐसे वाद्यों का प्रयोग होता था जिन्हें एक स्थान से दूसरे स्थान तक आसानी से ले जाया जा सकता था। इस प्रकार डफ, डमरू, किंगरी, अलगोज़ा, काठ, घड़ा, बांसुरी इत्यादि हैं।

प्राचीन तंत्री वीणा का एक आदिल् रूप अनेक सदियों तक पंजाब में तूंबे के नाम से प्रचलित रहा। इसका संक्षिप्त आकार आज भी यहां तूंबी के नाम से प्रख्यात है। इस वाद्य की प्रमुख विशेषता यह

है कि लय एवं तीन चार स्वरों का सहयोग गायक को एक ही वाद्य से मिलता रहता है। तूंबी पर गाये जाने वाले पंजाब के प्रसिद्ध लोक गायकों में स्वर्गीय श्री लालचन्द जमला जट का नाम जगत विख्यात है, जो कि एक उत्तम लोक गायक होने के साथ साथ उच्च कोटी के कवि भी थे। लोक संगीत की परम्परा उनके वंश में आज भी जारी है। तूंबी में भी नये नये प्रयोग किए गए, संशोधन किये गए। इस में भी पर्दे लगाने के अतिरिक्त इसमें इलैक्ट्रोनिक पिक–अप लगाना भी शुरू किया गया। उन्होंने तूंबों के इस संशोधित स्वरूप का नाम सुरीली रखा, इस पर वे मध्य सप्तक के अतिरिक्त तार सप्तक के एक दो स्वरों का वादन करते हुए पंजाबी लोक धुनों का मनमोहक वादन करते थे।

इसी तरह सारंगी के अनेकों आदिल रूपों से पंजाब की सारंगी भी एक है, जिस में तांत के कुछ मुख्य तारों के अतिरिक्त धातू के 12 से लेकर 25 तक तरब के तार भी प्रयुक्त होते हैं। इसके कुछ अलंकारों की भी जानकारी होती है। इसे बजाते समय झूम झूम कर स्वर और लय का आनन्द लेते हैं और अपने साथ श्रोताओं को झूमने पर विवश कर देते हैं।

घन वाद्यों के अन्तर्गत दूसरे अनेक प्रांतों की भांति पंजाबी लोक संगीत में भी घड़ा अपना विशेष स्थान रखता है। यहां इसके वादन की प्रमुख विशेषता यह है कि अच्छी तरह पकाये और रंगे गये घड़ों को वादक दाएं हाथ में पहले छल्लों से और बाएं हाथ से घड़ों के मुख पर प्रहार करते हुए पंजाबी लोक तालों के विविध ठेके तथा अनेक मनमोहक लयकारियां प्रस्तुत करते हैं। इस बात की चर्चा ज़रूरी है कि चिमटा, घूंघरू, काटो आदि वाद्यों का वर्तमान में और भी अच्छे से प्रयोग किया गया है जैसे सईद जुहूर जैसे गायकों ने केवल चिमटा एवं घुंघरू पहन कर इस तरह से गाया हो मानो किसी और वाद्य कि आवश्यकता ही नहीं।

लोक संगीत के बाद अगर हम शास्त्रीय क्षेत्र की बात करें तो सबसे पहले पंजाब में प्रचलित वाद्य 'रबाब का ज़िक्र होता है, उस समय रबाब को बजाने वालों को मीरासियों का घराना माना जाता था। भाई मर्दाना मुख्यता रबाब ही बजाते थे। आश्चर्य की बात है कि पूरी दुनिया में केवल दो या तीन प्रतिशत लोग हैं जिन्होंने रबाब को देखा या सुना। पंजाब में भी रबाब बजाने वाले कलाकारों की गिनती बहुत कम है। गुरू नानक देव जी ने बाणी की सफल प्रस्तुती के लिए संगीत का संग करने के लिए भाई मर्दाना को अपना संगी साथी चुना। भाई मर्दाना जी उस समय के उच्च कोटी के रबाब वादक थे जिनके रबाब वादक के विषय में भाई गुरदास जी ने कहा है :–

भला रबाब बजाईदा, मजलस मरासी मरदाना।। 1
ईकि बाबा अकाल रूप दूजा रबाबी मरदाना।।
दिति बांग निमाज कर सुन समानि होआ जहाना 2।।

श्री गुरू नानक देव जी जब भी शबद का गायन करते तो भाई मरदाना जी रबाब द्वारा उनकी संगत करते। भाई मरदाना के पश्चात रबाब वादन की परम्परा उनके वंशज मीरासियों में काफी वर्षों तक चलती रही। भाई मरदाना बहुत ही बड़े वादक थे, इसलिये कल्पना की जा सकती है कि इन्हें परम्परागत

रूप में ही अपने पूर्वजों से ज्ञान प्राप्त हुआ होगा लेकिन सिख धर्म के अनुयायियों में यह मत प्रचलित है कि रबाब का आविष्कार गुरूनानक देव जी ने किया[3] और उन्होंने ही भाई मरदाना को इसके वादन की शिक्षा प्रदान की। लेकिन यह मानना ज्यादा उचित होगा कि गुरू नानक देव जी ने हरि कीर्तन एवं अपने विचारों के प्रचार के लिए आरंभ से ही संगीत का आधार लिया, तो संभव है कि गुरू नानक देव जी ने विदेशी रबाब में कुछ परिवर्तन कर उसे भारतीय राग के विशेष अनुकूल बना दिया हो लेकिन पूर्ण रूप से उसे भारतीय आविष्कार मान लेना न्याय संगत न होगा। जबकी रबाब नाम के वाद्य का उल्लेख गुरू जी से पूर्व लिखित फारसी ग्रंथों में देखने को मिलता है। रबाब गुरू नानक देव जी का प्रिय वाद्य था। उनके पश्चात् सभी गुरूओं के काल में यह कीर्तन का प्रधान संगत वाद्य रहा। प्रायः गुरबाणी में अन्य वाद्यों की अपेक्षा रबाब का अधिक उल्लेख मिलता है। गुरू अर्जुन देव जी की शबद रचना इस प्रकार है:

बिन बाजे कैसे निरतकारी।।
बिन कंठै कैसे गावनहारी
जील बीना कैसे बजै रबाबा।[4]

इस शबद में 'जील' का अर्थ तार लिया जाता है। पंजाब का यह वाद्य लुप्त हो गया था लेकिन अब सिख संस्थाओं ने रबाब को दुबारा जीवित रखने के लिए बहुत प्रयास किए हैं। हरमन्दिर साहिब में नित्यप्रति कीर्तन में रबाब, सरिन्दा, दिलरूबा आदि का वादन सुनने को मिलता है। यहां इस बात पर गौर करना पड़ेगा कि वर्तमान पीढ़ी में रबाब का भले ही प्रयोग बहुत कम किया, लेकिन उसके साथ पंजाबी हृदय का भावात्मक सम्बन्ध है, इस बात को नकारा नहीं जा सकता। रबाब भारतीय वाद्य नहीं है, इस में कोई संदेह नहीं। इस वाद्य का नाम प्राचीन फारसी के ग्रन्थों में आया है और विद्वानों के अनुसार यह वाद्य पूर्व से प्रवेश करने वाले विदेशियों द्वारा लाया गया है।[5] गुरू नानक देव जी के हरी कीर्तन के साथ रबाब का सम्बन्ध जुड़ जाने से रबाब स्वयं और इस के वादक मरदाना दोनों ही अमर हो गए।

शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में कुछ समय बाद रबाब का स्थान सरोद वाद्य ने ले लिया। हारमोनियम का प्रचार और प्रसार बढ़ता चला गया क्योंकि अधिकतर रागीयों को हारमोनियम के साथ कीर्तन करने में अधिक सुविधा महसूस होने लगी। उसका परिणाम यह हुआ कि पारम्परिक वाद्य प्रायः लुप्त ही होते चले गए। रबाब के पश्चात् ताऊस और दिलरूबा या इसराज के साथ सिक्ख कीर्तन करते थे। इन वाद्यों को बजाने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता था, धीरे धीरे इन वाद्यों के वादक भी कम ही होते चले गए।

पखावज पंजाब में काफी लोकप्रिय रहा। पंजाब में ध्रुपद गाने वाले एवम् ध्रुपद के घराने और दूसरे प्रांतों की अपेक्षा ज्यादा थे। इसीलिए हम मान सकते हैं कि पखावज ने इन्हीं घरानों के साथ पंजाब में ख्याती प्राप्त की होगी। सिक्ख गुरूद्वारों में भी पहले कीर्तन में पखावज और मृदंग के साथ ही संगति की जाती थी। धीरे धीरे तबले ने पखावज की जगह ले ली। प्राचीन कीर्तन परम्परा की बन्दिशें आज भी

कुछ रागी पखावज की संगत के साथ गाते हैं और यही नहीं लयकारियों का भी प्रचलन है। विद्वानों के अनुसार एक ही वाद्य को उत्तर में पखावज की संज्ञा दी है और दक्षिण में मृदंग।[6] डा. लालमणि मिश्र इस बात से सहमत नहीं हैं कि उत्तर भारत में पखावज को मृदंग कहने का भी रिवाज़ है। उत्तर भारतीय संगीत में प्रयुक्त होने वाली मृदंग दक्षिण भारत के 'मृदंगम' से आकार प्रकार तथा ध्वनि में भिन्न है।[7] गुरू ग्रन्थ साहिब में पखावज वाद्य के लिए निम्नलिखित पंक्तियां मिलती हैं जो गुरूनानक देव द्वारा रचित हैं:–

वाजा मति पखावज भाउ।।
होई अनंदु सदा मन चाउ।।[8]

भक्ति काल यानि मध्यकाल में पखावज एक प्रसिद्ध वाद्य था और यह कंठ संगीत, बीन, रबाब, वीणा तथा सुर सिंगार की संगत में प्रयोग होता है। कीर्तन परम्परा में 'शब्द रीतें बहुत प्रचलन में थीं। इन रीतों के साथ प्रायः पखावज या मृदंग की संगत से सिक्ख भाव प्रधान भक्ति संगीत के प्रभावोत्पादकता में वृद्धि हो जाती थी।[9]

पखावज के प्रचलन के बाद तबले का विकास, उत्पति कब हुई यह कहना बहुत मुश्किल है लेकिन वर्तमान युग में तबला वाद्य सारे उत्तर भारतीय संगीत में छा गया। सभी शिक्षा संस्थानों में, विद्यालयों, महाविद्यालयों में तबला शिक्षा की कक्षाएं चलती हैं और पखावज की कक्षाएं केवल एक प्रतिशत देखने में आती हैं। इस प्रकार पंजाब में सिक्ख कीर्तन प्रेमियों ने भी तबले को ज्यादा अपनाया और फल स्वरूप तबले के अनेक घराने अस्तित्व में आए। सिक्ख कीर्तन में विशेषकर काष्ठ की जोड़ी का प्रयोग 'बायां' 'धम्मा' और 'दायां' 'मदीन' नाम से जाना जाता था। आज भी कई वादक आटे का प्रयोग करते हैं ताकि गम्भीर कंपन युक्त आवाज़ आए।

पंजाब के प्रसिद्ध वाद्यों में ताउस बहुत ही सुन्दर वाद्य है। ताउस अरबी भाषा का शब्द है और अरबी एवं फारसी दोनों में ही मोर के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इस वाद्य का आधा भाग मोर की आकृति का होता है और उसके साथ मोर के पंख भी लगे होते हैं। 'भारतीय संगीत वाद्य' नामक ग्रन्थ के लेखक ने ताउस को 'मयूरी इसराज' संज्ञा के अर्न्तगत विवेचन किया है।[10] सिक्ख कीर्तन में विशेषकर संगत वाद्य के रूप में भी ताउस का प्रयोग होता है और कई रागी एकल रूप वाद्य के रूप में भी प्रस्तुती देते दिखाई देते हैं। आजकल भाई शिरिपाल ताउस बजा कर कीर्तन गायन करते हैं और देश विदेशों में ताउस की शिक्षा भी देते हैं। भारत के अन्य भागों के अपेक्षा पंजाब में यह अधिक लोकप्रिय था। ताउस वाद्य में मुख्य चार तार और अठारह तरबें होती थी जो राग के स्वरों के हिसाब से मिलाई जाती थीं। इसकी डांड पर आधुनिक दिलरूबा अथवा इसराज की भांति परदे बंधे होते थे और बाएं हाथ की उंगली से तार दबा कर, दाहिने हाथ से गज का परिचालन कर ध्वनि उत्पन्न की जाती थी। एक ध्यान देने की बात है कि आज कल गुरूबाणी कीर्तन में इसका प्रचार एवं प्रसार काफी बढ़ रहा है। जवददी कलां लुधियाना में शास्त्रीय क्षेत्र में प्रयोग किए जाने वाले वाद्यों पर काफी काम किया जा रहा है। एवं आज कल सभी टीवी, ईन्टरनेट, प्रतियोगिता में जब गुरूबाणी संगीत का गायन सुनते हैं तो सभी गायकों के साथ दिलरूबा, सरोद या ताउस आदि वाद्यों का वादन अवश्य ही सुनाई देता है।

ताउस के समान दिलरूबा भी पंजाब प्रचलित वाद्यों में से एक है। इसमें ऊपर वाला भाग सितार की भांती डांड युक्त और नीचे वाला भाग सारंगी की तरह होता है। इस वाद्य में परदे लगे होते हैं और सारंगी की भांती गज के घर्षण से ध्वनि उत्पन्न की जाती है। सितार की आकृति का होने से इसमें भारतीयता का पूरा प्रमाण मिलता है। यद्यपि नाम के आधार पर 'दिलरूबा' विदेशी, विशेषकर .फारसी वाद्य होने का संकेत करता है।

पंजाब के प्रमुख वाद्यों में सारिन्दा एक अन्य प्रकार है। कीर्तन के आरंभिक काल में संगत के लिए सारंगी का अधिक प्रयोग होता था। अगर हम थोड़ा पीछे जाते हैं तो देखते हैं कि सारंगी का वैश्याओं के साथ वादन का प्रचलन था इसलिए समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। गुरू अर्जुन देव जी ने इस तथ्य की ओर ध्यान दिया और उन्होंने उसी से मिलते जुलते वाद्य का आविष्कार किया और इसका नाम सारिन्दा रखा। ए.एस. गोसल के अनुसार गुरू अर्जुन देव जी ने सारिन्दा हाथ में लेकर कीर्तन करने का आदेश दिया।[11] भाई काहन सिंह नाभा, गुरू शब्द रतनाकर महान कोश में लिखते हैं कि सारिन्दा का आविष्कार गुरू अर्जुन देव जी ने ही किया।[12] जहां सारिन्दा का प्रयोग कीर्तन के लिए हुआ ढ़ाढ़ियों ने भी सारंगी को छोड़ कर सारिन्दे की ही संगत के साथ गाना शुरू कर दिया। सारंगी और सारिन्दे में आकार में थोड़ा अन्तर है। सारंगी का आधा भाग चौखूंटा होता है और सारिन्दे का अण्डे के सामान गोलाई लिए हुए होता है। इसके नीचे के भाग का थोड़ा अंश झिल्ली से ढका होता है। यह दो फुट लम्बा होता है और इसमें तांत की तीन तारें लगी होती हैं। सारंगी की भांति चार नहीं होती। कुछ विद्वानों के अनुसार सारिन्दा उच्चस्तर का वाद्य नहीं है लेकिन यह निम्नश्रेणी वालों के साथ अत्यन्त लोकप्रिय है। The Sarinda is not very high class instrument but its very popular with the lower classes. The chief pecularity of the Sarinda consists in the way that the belly, which is of perchment is put on. It is made to cover only the lower part of body; leaving the upper half quite open.[13]

सिक्ख कीर्तन में सारिन्दा का बिल्कुल लोप हो चुका है। दरबार साहिब में इस वाद्य के साथ कीर्तन करने वाले अन्तिम सिक्ख रागी महन्त शाम थे जिन्होंने 70 वर्ष तक कीर्तन किया।[14] आजकल वाद्य का प्रयोग प्रायः योगियों और फकीरों द्वारा लोक–कथाओं और भक्ति गीत सुनाते समय ही किया जाता है। पंजाब के मंडी शहर के गुरूद्वारों में गुरू गोबिंद सिंह द्वारा वादित सारिन्दा वाद्य आज भी मौजूद है। कैप्टन डे के अनुसार कि ये मुख्यतः निम्नश्रेणी का साज है, कुछ ठीक नहीं लगता। यह बात दूसरी है कि इस समय यह वाद्य दीन हीन अवस्था में है। लेकिन यह भी स्मरण करने योग्य है कि किसी समय सिक्ख गुरूओं के हाथों के स्पर्श से इसने अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

विचित्र वीणा नामक वाद्य का भी पंजाब के साथ अत्यंत घनिष्ठ सम्बन्ध है विशेषकर पटियाला। पटियाला दरबार के ही प्रसिद्ध वीणा वादक अब्दुल अज़ीज खां को 'विचित्र वीणा' के आविष्कारक होने का गौरव प्रदान किया जाता है।[15] वस्तुतः यह तथ्य विवादग्रस्त है कि विचित्र वीणा वाद्य अथवा इसके आकार प्रकार से मिलता हुआ अन्य वाद्य इससे पूर्व भी भारतीय भूमि पर प्रचलित था या नहीं। लेकिन

इसमें संदेह नहीं कि वर्तमान युग में इसको प्रकाश में लाने वाले कलाकार उस्ताद अब्दुल अज़ीज़ खां ही हैं। उस्ताद अब्दुल अज़ीज़ खां का सम्बन्ध पटियाला दरबार से ही था। आपको सारे भारत में आमंत्रित किया जाता था। इस वाद्य को पंजाब की ही देन माना जाना ज़्यादा उचित होगा।

विचित्र वीणा में दो तूम्बे होते हैं जिसकी डांड पर चार मुख्य तार चड़े होते हैं और नीचे तरब के तार होते हैं। विचित्र वीणा की अगर कल्पना करनी है तो जैसे दो घड़ों पर एक डांड रखी हो। इसी डांड पर परदे बंधे होते हैं और तारों पर कांच बटटे के घर्षण से स्वर उत्पन्न किए जाते हैं। बाएं हाथ पर बटटा होता है और दाहिने हाथ की अंगुलियों में दो तीन मिज़राबें पहन कर तारों पर आघात किया जाता है।

इस लेख में वाद्यों की चर्चा करना इसलिए आवश्यक समझा कि आजकल गायन के साथ हारमोनियम का भी प्रयोग होने लगा है। बड़े दुख से कहना पड़ता है की जहां शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में पंजाब ने अनेक वाद्यों को जन्म दिया तो आज हम ज़िन्दगी की दौड़ में इतने व्यस्त हैं कि परम्परागत वाद्यों को भूलते जा रहे हैं। इस पर दुबारा से चयन करने की आवश्यकता है । मेरा ऐसा कहना बिलकुल नहीं है कि इस क्षेत्र में कार्य नहीं हो रहा, परन्तु उसकी गति को बढ़ाना होगा। शास्त्रीय संगीत के गायक अपने गायन में तानपुरे का ही आधार लेते थे लेकिन पंजाब में लोगों का आकर्षण हारमोनियम के प्रति अधिक हो जाने के कारण मध्यम श्रेणी के कलाकर हारमोनियम को ही मुख्य आधार लेने लगे हैं। उच्च श्रेणी के कलाकार अभी भी तानपुरे के अभाव में गायन नहीं करते। शास्त्रीय संगीत और सिक्ख कीर्तन के क्षेत्र में किसी तंती वाद्य का वादन एकल या संगत वाद्य के रूप में किया जा सकता है लेकिन विशेष प्रांतो में विशेष वाद्यों के प्रति ही लोगों का आकर्षण होता है।

अब अगर हम लोक वाद्य एवम् शास्त्रीय वाद्यों की बात करें तो प्रश्न यह उठता है कि इन वाद्यों में आये नवीन परिवर्तन क्या हैं उनका प्रस्तुतीकरण में क्या योगदान है?

इस नवीनिकरण के परिणाम मिले जुले कहे जा सकते हैं जहां इससे कलाकारों को आधुनिक तकनीक से जुड़ने की संतुष्टि मिलती है वहीं पारम्परिक लोक एवं शास्त्रीय वाद्यों की मौलिक ध्वनि कहीं गुम सी हो गई प्रतीत होती है, जिसे सुनते ही ऐसा आभास होने लगता था मानों हम शहर से किसी गांव के शांत साधारण एवं सुगन्धित वातावरण में आ गए हैं, जहां होने मात्र से मन में एक दैवीय और स्वर्ग जैसी अनुभूति हिलोरे लेने लगती है। उसका एक कारण यह है कि इन वाद्यकारों को बेरोज़गारी का सामना करना पड़ा। रोटी कपड़ा और मकान की ज़रूरत पूरी न होने के कारण कोई और व्यवसाय करना पड़ा। केवल शादियों में जा कर लोगो का मनोरंजन करना एक कलाकार के लिए असहनीय है। दूसरा कारण जब कलाकार अपने आसपास देशों, विदेशों में लोगों को आगे बढ़ता देखता है तो अपनी कला में कुछ परिवर्तन ला कर प्रगति करना स्वभाविक है। आज भी कुछ ऐसे उदाहरण है जो पंजाबी लोक संगीत वाद्यों की समृद्धि एवं विस्तृत परम्परा का संक्षिप्त परिचय देते हैं। परन्तु आजकल के भूमंडलीकरण के युग में जहां विज्ञान के नवीन आविष्कारों एवं निरन्तर गति से परिवर्तित होती हुई जीवन शैली में पंजाबी ग्रामीण जीवन को काफी अंशों तक बदल दिया है। आजकल लोक संगीत के कार्यक्रमों में

आधुनिक तकनीक पर आधारित विभिन्न प्रकार के की बोर्ड, ओक्टोपेड, सिन्थेसाईज़र का प्रयोग होने लगा है, जिनके द्वारा अनेक वाद्यों की कृत्रिम ध्वनि एक ही वाद्य से निकाली जा सकती है। चाहे वे लोक वाद्य हो या शास्त्रीय वाद्य। साथ ही नवीनतम प्रकार के ध्वनि प्रसारित यंत्र प्रयुक्त होने लगे। इनमें अनेक नये उपकरण वाद्यों की ध्वनि की तारता, तीव्रता, और जातिगुण आदि सम्बन्धित विशेषताओं का समन्वय करके एवं परिवर्तित करके प्रसारित करते हैं तो इस तरह प्रस्तुतिकरण में संगीत के हर क्षेत्र में नित्यप्रति नये प्रयोग हुए हैं और हो रहे हैं, तो पंजाब के लोक एवं शास्त्रीय वाद्य संगीत में प्रस्तुतिकरण क्यों अधूरा रहता। आज प्रस्तुतिकरण में जहाँ एक ओर कलाकार की कला का योगदान रहता है, वहां दूसरी ओर तकनीक का भी बड़ा हाथ है। यहाँ तकनीक का ही फल है कि आज 'माइक्रोफोन' की मदद से प्रस्तुतिकरण देना सहज सम्भव हो सका है। जैसे उदाहरण के लिये 'अलगौज़ा' जैसा साज़ बजाने के लिए वादक गले से विशेष प्रकार से फूंक देता है, जिससे श्रोताओं को उसके सांस लेने का बिल्कुल भी आभास नहीं हो पाता और उन्हें लगता है मानों वादक एक ही सांस में लंबे समय तक वादन कर रहा हो। अगर हम कलाकार की दृष्टि से माईक के महत्व को देखें तो हम पाते हैं कि जब माइक्रोफोन का आविष्कार नहीं हुआ था, यह आम लोगों की पहुंच से दूर था। पहले लोगों को माईक न होने की वजह से वाद्ययंत्र जोर से बजाना पड़ता था, जिससे उनके वोकल कोर्डस पर असर पड़ता था। आज माईक होने से ज्यादा ज़ोर लगाने की आवश्यकता नहीं है। इसी तरह जब वादक मंद्र सप्तक का विस्तार करता है तो वह अपना वाद्य माईक के बिल्कुल पास ले जाता है, आघात बहुत ही साफ सुनाई देता है।

इसी तरह पहले इन वाद्यों का प्रस्तुतीकरण केवल गीतों के लिए ही होता था, लेकिन आज निपवद के युग में अगर हिन्दी गीत गाया जा रहा है तो वहीं बीच में पंजाबी लोक भाषा का भी प्रयोग करके और लोक वाद्यों की प्रस्तुति और श्रोताओं के आनन्द की अनुभूति और बढ़ जाती है। आजकल के नये प्रयोगों में सबसे ज्यादा ढोलक का प्रस्तुतिकरण अंग्रेज़ी संगीत के साथ अक्सर सुनने को मिलता है। ढोलक की ध्वनि की सुन्दरता के कारण लय के लिए वे इसका प्रयोग करते हैं।

आजकल विशेष प्रस्तुतियों के लिए वादक सुन्दर वेशभूषा, आभूषण आदि पहनते हैं। इसके अतिरिक्त आजकल् पारंपरिक लोकवाद्यों को इतने सुन्दर तरीके से सजाकर प्रस्तुति की जाती है कि श्रोता पहले साजोसज्जा देखकर ही चकित हो जाते हैं। इस प्रकार प्रस्तुति करते समय वेशभूषा का खास ध्यान रखा जाता है। यह कहना उचित होगा की लोक संगीत कला अपने संरचना में कम से कम साधन सामग्री की सहायता से अधिक भाव व्यक्त कर पाने की क्षमता के कारण ही ललित कलाओं सर्वश्रेष्ठ स्थान लिये हुए हैं। सुंदर प्रस्तुतिकरण के कारण ही पंजाबी लोक वाद्य संगीत का समृद्ध भंडार आज भी अपनी विविधता और मनोहारिता के कारण भारत में ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण विश्व में स्थायी एवं सम्मान प्राप्त कर रहा है। वैश्वीकरण के इस दौर में अगर हम देखें तो इन्टरनेट, फेसबुक, मीडिया, टीवी, रेडियो, व्हाट्सऐप आदि से सभी प्रकार की सूचनाएँ उपलब्ध हैं। आपसी आदान प्रदान करने के लिए सरल साधन हैं। भारत में बैठे सात समुन्दर पार से अन्य देशों के कलाकारों से सम्पर्क करके अपनी कला को श्रोताओं के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इसके अतिरिक्त आज की युवा पीढ़ी ने बैन्ड के द्वारा वैश्वीकरण के इस दौर में अपनी

परम्पराओं को जीवित रखने की कोशिश की है। भले ही कई बार लोक गीतों में पश्चिमी ताल का प्रयोग करके कुछ अलग दिखाकर प्रस्तुत किया जाता है, उसका यह अर्थ कदापि नहीं कि बदलाव केवल हानि ही करता है, क्योंकि पश्चिमी सभ्यता का प्रभाव आना स्वाभाविक है। संगीत क्रियात्मशील कला है। आज की पीढ़ी प्रगतिशील स्वभाव की है। अपनी परम्पराओं, नवीन प्रयोगों को साथ लेते हुए भी वे अपने लोक वादन एवं शास्त्रीय वाद्य संगीत की परम्परा को समेटे हुए है।

आज भी जब हम टीवी चैनल खोलते हैं तो वादक कुर्ता, चादरा, तिले की जूती, लुंगी, गले में साफा पहनकार तुंबी, चिमटा, अलगोज़े, ढोल, ढोलक, वंजली, सारंगी आदि साज़ों के साथ अपनी कला कुशलता का प्रदर्शन करते हैं। भक्ति संगीत के क्षेत्र में भी हरमन्दिर साहिब में भी जब कीर्तन का संचार होता है तो सभी रागी एक तरह की वेशभूषा पहनते हैं ताकि प्रस्तुतिकरण प्रभावशाली हो। सारांशतया हम यही कह सकते हैं कि वाद्य ही एक मात्र साधन है जो गायन तथा वाद्यों को अधिक प्रभावशाली बनाने में समर्थ है। वाद्यों के महत्व को लोक संगीत, भक्ति संगीत, शास्त्रीय संगीत से नकारा नहीं जा सकता, इन्हीं तथ्यों के आधार पर हम कह सकते हैं कि भविष्य में पंजाब ही नहीं अपितु सम्पूर्ण विश्व में वाद्यों का महत्व और अधिक बड़ेगा और प्रतिफलित होगा।

पाद–टिप्पणियाँ

1. भाई गुरदास दीयां वारां, वार 11 पउड़ी 13
2. भाई गुरदास दीयां वारां, वार पहिली पउड़ी 35
3. प्रोफेसर तारा सिंह, वादन कला, पृष्ठ 270
4. गुरू ग्रन्थ साहिब, भैरव महला 5, चौपदे घर 2, पृष्ठ 1140
5. Sripada Bandopadhya, Musical Instruments of India, Page 49
6. HA Poply - The Music of India, Page-125
7. डा. लालमणि मिश्र भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ 95
8. गुरू ग्रन्थ साहिब आसा महला 1, चौपदे घर 2, पृष्ठ 350
9. Dr. A.S. Paintal, the nature and place of Music, page 330.
10. डा. लालमणि मिश्र भारतीय संगीत वाद्य, पृष्ठ 17
11. ए.एस. गोसल, सिक्ख धर्म अतः संगीत, पृष्ठ 64
12. भाई काहन सिंह नाभा, गुरू शब्द रत्नाकर महान कोश, पृष्ठ 128
13. Captain day, The music and musical instruments of Southern India and the Decan, Page 126
14. ए.एस. गोसल, सिक्ख धर्म अतः संगीत, पृष्ठ 62
15. डा. सुशील कुमार चौबे, हिन्दुस्तानी संगीत के रत्न, पृष्ठ 255